प्र० → कठोपनिषद् के आधार पर आत्मा के स्वरूप का विवेचन करें।

Ans.

बालक नचिकेता ने यमराज से तीन वर माँगे थे। उन तीनों वरों के क्रम में भी एक अद्भुत रहस्य है। उसका पहला वर था पितृपरितोष। यह वर लौकिक प्राप्ति की भावना से ओत-प्रोत है। लौकिक शान्ति के पश्चात् मनुष्य को स्वभावतः पारलौकिक सुख की आकांक्षा होती है, यहाँ तक कि जब वह अधिक प्रबल हो जाती है, तो वह ऐहिक सुख की रंचमात्र भी परवाह नहीं करता। अतः बालक नचिकेता ने द्वितीय वर के रूप में स्वर्गलोक की उपलब्धि का साधनभूत अग्नि विज्ञान माँगा। इस वर की याचना में मनुष्यमात्र की हितचिन्ता निहित है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन दोनों वरों में से प्रत्येक वर अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, लेकिन तीसरा वर सर्वोपरि है और वह है आत्मदर्शन की अनवरत पिपासा की परितृप्ति की याचना।

उपर्युक्त दोनों वरों की यमराज के द्वारा पूर्ति के पश्चात् बालक नचिकेता ने आत्मरहस्य ज्ञान प्रदान के लिए उनसे प्रार्थना की जो अग्रिम पंक्तियों से स्पष्ट है —

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥"

नचिकेता की आत्मरहस्यज्ञान-संबंधिनी जिज्ञासा की परीक्षा के लिए यमराज ने उसे नानाविध प्रलोभन दिए तथा बड़े-बड़े मनोमोहक सब्जबाग दिखलाए। परन्तु आत्मामृत के लिए लालायित नचिकेता ने उन सारे प्रलोभनों पर

P.T.O

बिल्कुल ध्यान नहीं दिया एवं यही कहा— 'वरस्तु मे वरणीयः स एव' नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।'

इस प्रकार जब यमराज ने देखा कि बालक नचिकेता लौकिक एवं पारलौकिक भोगों से सर्वथा उदासीन है; वह शमदमादि साधनों से सर्वथा सम्पन्न है, तो उन्होंने इस बालक की शान्ति के लिए ज्ञानामृत की वर्षा इस प्रकार की:—

इस भूतल पर कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनको आत्मा के विषय में कुछ सुनने का भी अवसर प्राप्त नहीं होता तथा कुछ अशुद्धचित्त पुरुष ऐसे हैं जो इसके विषय में सुनकर भी कुछ जान नहीं पाते। वस्तुतः इसका वास्तविक ज्ञान करनेवाला कोई निपुण पुरुष ही होता है तथा ज्ञाता भी आश्चर्यरूप।

इस आत्मा का ज्ञान साधारण बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति के द्वारा कदापि नहीं कराया जा सकता। कारण यह है कि वादियों द्वारा इसके विषय में अस्तिनास्ति, कर्त्ता-अकर्त्ता, शुद्धाशुद्ध आदि नानाविध चिन्तन किए जाते हैं। इसका सम्यक् ज्ञान अपृथग्दर्शी आचार्य ही करा सकता है जो अपने प्रतिपाद्य ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हो चुका है। वही आचार्य इस बात की स्थापना करता है कि यह आत्मा वस्तुतः सम्पूर्ण विकल्पों से पूर्णतः रहित है।

वस्तुतः इस आत्मा की न तो उत्पत्ति होती है और न विनाश ही। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है तथा शरीर के अवसान हो जाने पर भी यह स्वयं नहीं मरता। शरीरमात्र को ही आत्मा समझनेवाला व्यक्ति यदि किसी के शरीर का हनन कर यह समझता है कि उसने आत्मा का भी हनन कर दिया, तो यह उसका भ्रम है। वस्तुस्थिति तो यह है कि शरीर के मारे जाने पर भी आत्मा मारा नहीं जाता। यह न तो मरता है और न मारा ही जाता है।

इस आत्मा की स्थिति जीव की हृदयरूप गुहा में है।

वह अणु से भी अणुतर एवं महान् से भी महत्तर है। निष्काम पुरुष ही अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की इस महिमा को देखता है तथा शोकरहित हो जाता है। इस आत्मा की वास्तविक स्थिति यह है कि वह स्थित रहकर भी दूरगामी है, शयनावस्था में रहकर भी सब ओर पहुँचता है। यह आत्मा हर्षसहित एवं हर्षरहित भी है।

शरीर में शरीररहित तथा अनित्यों में नित्यस्वरूप इस महान् एवं सर्वव्यापक आत्मा के विषय में जानकर बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता है। इस आत्मा की प्राप्ति वेदाध्ययन के द्वारा असंभव है। इसे धारणाशक्ति या अधिक श्रवण से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। पापकर्मों से अनिवृत्त, अशान्तेन्द्रिय, असमाहित तथा चंचल चित्तवाला व्यक्ति आत्मज्ञान द्वारा इस आत्मा को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता।

गीता के द्वितीय अध्याय में भी आत्मस्वरूप निरूपण कठोपनिषद् के सदृश ही किया गया है। ये दोनों ग्रंथ समानरूप से आत्मा के स्वरूप का निर्धारण करते हैं।

वस्तुतः आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान वही कर सकता है जो अभेददर्शी आचार्य है, जो अविद्या का पूर्णतः हनन कर विद्या को प्राप्त कर चुका है, जो साधनचतुष्टय-सम्पन्न है।

यमराज द्वारा नचिकेता को प्रदत्त आत्मतत्वज्ञान सम्पूर्ण लोकों के कल्याणार्थ आज भी कठोपनिषद् के रूप में विद्यमान है। लेकिन उससे विशुद्ध बोधरूप अंकुर तो उसी हृदय में प्रस्फुटित हो सकता है जो नचिकेता के सदृश साधनचतुष्टय सम्पन्न है। परम उदार बलाहक जल तो सभी स्थलों पर बरसाते हैं, परन्तु उसका परिणाम नानाविध भूमियों के योग्यतानुसार नानाविध होता है। ठीक यही बात शास्त्रोपदेश के सम्बन्ध में भी लागू होती है। शास्त्रकृपा तथा ईश्वरकृपा तो सभी पर एकवत्

P.T.O

है, लेकिन आत्मकृपा की न्यूनाधिकता के परिणाम-स्वरूप उससे होनेवाले परिणामों में स्पष्ट अन्तर रहता है। 'केन उपनिषद् की इस उक्ति —

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनिष्टिः' के अनुसार इस मानव जीवन का परम लाभ आत्मामृत की प्राप्ति ही है। अतः इसकी प्राप्ति ही हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।

The END